'ध्रुवस्वामिनी' एवं अजातशत्रु नाटक में नारी चरित्र के विभिन्न पहलू : एक दृष्टि

– रेखा पन्त, शोध छात्रा, हिन्दी
डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या।
https://doi.org/10.61410/had.v18i2.145

सारांश :– प्रसाद जी हिन्दी साहित्य के प्रथम नाटककार थे जिन्होंने अपने ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय कर निष्प्राण इतिहास में प्राणों का संचार किया। अपनी विशेष प्रतिभा से अतीत के दुर्भेद्य तहों में दबी भारतीय संस्कृति के उद्धार का सराहनीय प्रयास किया।
शब्द संकेत :– विजयोपलक्ष्य, अनुभूतिपूर्ण, कूटनीतिज्ञता, अभिव्यंजना।

प्रस्ताव :–

प्रसाद जी के नाटकों में जहाँ एक ओर भारतीय नाट्यशास्त्र के सभी अंगों का परिपाक हुआ है वहीं दूसरी तरफ पाश्चात्य साहित्य के स्वस्थ्य सिद्धान्तों का सामंजस्य भी हुआ है। उनकी दार्शनिक विचारधारा भी नाटकों में जीवन का संदेश लेकर आती है। प्रसाद के कुछ प्रमुख नाटक अब तक प्रकाशित हुए है– उनमें 'अजातशत्रु', 'ध्रुवस्वामिनी',' चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'राज्यश्री', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'विशाख', 'कामना', 'एक घूँट' आदि प्रमुख हैं। प्रसाद के सभी नाटकों में नारी चरित्र के विभिन्न पहलूओं का अद्भुत दर्शन होता है ।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की ध्रुवस्वामिनी नायिका है। इसके नाम पर ही नाटक का नामकरण हुआ है। गुप्तवंश के सम्राट समुद्रगुप्त के विजयोपलक्ष्य में इसके पिता ने चन्द्रगुप्त के साथ इसका वाग्दान कर दिया है। किन्तु समुद्रगुप्त का कलीव पुत्र रामगुप्त ने अपने आमात्य शिखर स्वामी को मिलाकर षड़यंत्र से राज्य के साथ साथ ध्रुवस्वामिनी का भी स्वामी बन बैठा।

ध्रुवस्वामिनी के चरित्र द्वारा प्रसाद जी ने नारी की विवशता और व्यथा का जीव चित्रण किया है। ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त की स्निग्ध, सरल और सुंदर मूर्ति देखकर आकर्षित होती है, किन्तु वह स्वर्ण पिंजर में बंद है। प्रथम अंक में ही उसकी दशा का सुंदर चित्र मिलता है– ''सीधा तना हुआ, अपने प्रभुत्व की साकार कठोरता अग्रभेदी उन्मुक्त शिखर और इन क्षुद्र, कोमल, निरीह लताओं और पौधों को इसके चरण में लौटना ही चाहिए।''[1] ध्रुवस्वामिनी को भी इन निरीह लताओं के समान लौटना पड़ता है। रामगुप्त मदिरा में उन्मत्त हो विलासी जीवन व्यतीत करता है। ध्रुवस्वामिनी को अपने पति का मधुर संभाषण तक सुनने को भी नहीं मिलता है। इस राजकुल के अंतःपुर में उसके लिए नीरव अपमान संचित है। शकराज का संधि प्रस्ताव गुप्त शिविर में आता है। शकराज ने संधि में ध्रुवस्वामिनी को माँगा है। कायर रामगुप्त उसके इस प्रस्ताव को स्वीकार करता है। युद्ध की समस्या से छुटकारा पाने के लिए उसे उचित मार्ग चही मिलता है। शिखर स्वामी इस प्रस्ताव को स्वामिनी के समक्ष रखता है। वह अपने नारीत्व के अपमान से मर्माहत होकर व्यंग करती है। वह रामगुप्त से कहती है कि– ''गुप्त साम्राज्य क्या स्त्री संप्रदान से ही बढ़ा है?''[2] शिखर स्वामी को निर्भीकता से फटकारती है। ''अमाल, तुम बृहस्पति हो चाहे शुक्र, किन्तु धूर्त होने से ही क्या मनुष्य भूल नहीं कर सकता? आर्य समुद्रगुप्त के पुत्र पहचानने में तुमने भूल तो नहीं की? सिंहासन पर भ्रम से किसी दूसरे को तो नहीं बिठा दिया।''[3]

उसे अपने को पति समझने वाले पुरुष से कुछ कहना है, राजा से नहीं। ध्रुवस्वामिनी अपनी रक्षा के लिए रामगुप्त से प्रार्थना करती है किन्तु वह उसे उपहार की वस्तु कहकर अपनी इच्छानुसार किसी दूसरे को दे देना चाहता है। रामगुप्त की बातों से उसका शाश्वत नारीत्व प्रबल रूप धारण करता है, वह रामगुप्त को निर्लज्ज, मद्यप और कलीव तक कह जाती है। ''निर्लज्ज ! मद्यप !! कलीव

!!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? (ठहरकर) नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूंगी। मैं उपहार देने की वस्तु शीतल मणि नहीं हूँ। मुझ में रक्त की तरल लालिमा है। मेरा ह्रदय उष्ण है और उसमें आत्म सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूंगी।''[4]

वह अपमानित जीवन से छुटकारा पाने के लिए आत्म हत्या करना चाहती ही है कि चन्द्रगुप्त के आने पर रूक जाती है और ध्रुवस्वामिनी कारुणिक भाव से कहती है कि–''कुमार इसी समय तुम्हें भी आना था।''[5] चन्द्रगुप्त से वह सब बात कहती है। चन्द्रगुप्त उसे बचाने के लिए शकराज के पास जाना चाहता है किन्तु वह चन्द्रगुप्त को रोकती है, अपने क्षुद्र जीवन के लिए इतने बड़े त्याग की आवश्यकता नहीं समझती। रामगुप्त के ह्रदय में ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त के प्रति जो शंका थी उसे मूर्त रूप में देख ध्रुवस्वामिनी से कहता है कि–'तुमने आज मेरी आँखे खोल दीं।' तो ध्रुवस्वामिनी उसे कहती है कि– ''अनार्य! निष्ठुर! मुझे कलंक कालिमा के कारागार में बंद कर, गर्म वाक्य के धुएँ से दम घोंटकर मार डालने की आज्ञा न करो। आज मेरी सहायता मुझे अमृत पीलाकर मेरा निर्लज्ज जीवन बढ़ाने के लिए तत्पर है।''[6] ध्रुवस्वामिनी में युग युग से प्रताड़ित नारीत्व का दर्प जाग उठा है। यह चन्द्रगुप्त के प्रेम में भाव विभोर होकर अनुभूतिपूर्ण क्षण को याद करती है तथा अपने अंतर के द्वन्द्व को प्रकट करती है। ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त स्त्री वेश में शक शिविर में जाते हैं और शकराज की हत्या करते हैं। इसके बाद ध्रुवस्वामिनी पुरोहित से अपने विवाह की सत्यता पर शंका प्रकट करती है। वह अपना अधिकार माँगती, धर्म के कर्मकाण्ड को पुरोहित को फटकारती है।

कोमा जब ध्रुवस्वामिनी के पास शकराज का शव माँगने आती है तो वह अत्यंत कठोरता से उसे कहती है कि–''शत्रुओं के लिए मेरे पास कुछ नहीं है।''[7] किन्तु कोमा द्वारा प्रेम के आलोक महोत्सव की याद दिलाने पर वह उसे शकराज का शव देती है। रामगुप्त की आज्ञा से सैनिक जब चन्द्रगुप्त को बन्दी बनाते हैं, रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को चुप रहने के लिए कहता है और शिखर स्वामी अपनी कूटनीतिज्ञता का परिचय देता है तो ध्रुवस्वामिनी के लिए ये सब सहन करना असह्य सो जाता है, वह शिखर स्वामी को चुप रहने के लिए कहती है। ''चुप रहो। प्रवंचना पुतले। चुप रहो।''[8] अंत में ध्रुवस्वामिनी को शास्त्र के नियमानुसार रामगुप्त से मोक्ष मिलता है तथा ध्रुवस्वामिनी के साथ चन्द्रगुप्त का पुनर्लग्न होता है।

कोमा 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की सबसे भावुक नारी है। यह आचार्य मिहिरदेव की प्रतिपालिता पुत्री है, शकराज की प्रणयिनी है। कोमा कोमल भावनाओं की प्रतिमूर्ति के समान है। वह शकराज की वाग्दत्ता पत्नी है। उसके ह्रदय में शकराज के लिए अनंत प्यार है, किन्तु शकराज उसे केवल अपने विलास की सहचरी बनाना चाहता है। वह युद्ध की चिंताओं में व्यग्र है तथा ध्रुवस्वामिनी के आगमन की खुशी में कोमा की उपेक्षा करता है। कोमा के कोमल मर्मस्थल से एक टीस उठती है। सीढ़ी पर बैठकर वह प्रणय और प्रेम का अनुभूतिमय उत्कृष्ट वर्णन करती है। ''कोमा, प्रणय, प्रेम। जब सामने से आते हुए तीव्र आलोक की तरह आँखों में प्रकाश पुंज उड़ेल देता है, तब सामने की सब वस्तुएँ और भी स्पष्ट हो जाती हैं और अपनी ओर से कोई भी प्रकाश की किरणें नहीं।''[9] प्रेम में कोमा को रूठने का अवसर नहीं मिला है। शकराज उसे पाषाणी प्रतिमा कहकर अपने पास बुलाता है तो यह ''पाषाणी'' कहने के प्रत्युतर में उसकी सुंदर एवम साहित्यिक व्याख्या कर जाती है। ''पाषाणी। हाँ, राजा। पाषाणी के भीतर भी कितने मधुर स्त्रोत बहते रहते हैं। उनमें मंदिरा नहीं, शीतल जल की धारा बहती है। प्यासों की तृप्ति।''[10] कोमा मानवीय दुर्बलता को अच्छी तरह समझती है। ''अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या अच्छा नहीं है?''[11] ध्रुवस्वामिनी का आना उसे स्वभावतः अच्छा नहीं लगता है किन्तु शकराज के पूछने पर वह कहती है कि–''संसार में बहुत सी बातें बिना अच्छी हुए भी अच्छी लगती हैं और बहुत सी अच्छी बातें बुरी मालूम पड़ती है।''[12] शकराज के प्रेम में कोमा अनुभूतिमय बन गई है, लेकिन शकराज का प्रेम केवल भ्रम मात्र है।

शकराज ध्रुवस्वामिनी के आगमन की बात को राजनीति का प्रतिशोध कहता है तो कोमा दृढ़ता से कहती है कि–''राजनीति का प्रतिशोध क्या एक नारी को कुचले बिना नहीं हो सकता है।''[13] शकराज की अवज्ञा से जब मिहिरदेव कोमा को समझाते हुए दुर्ग से बाहर चलने के लिए कहता है तो कोमा का हृदय चित्कार कर उठता है, वह अपने पिता से अनुरोध करती है कि ऐसी कठोर आज्ञा न दो। ''तोड़ डालूँ पिताजी। मैंने जिसे अपने आँसुओं से सींचा, वही दुलार भरी वल्लरी, मेरी आँख बंद कर चलने में मेरे ही पैरों से उलझ गई। दे दूँ एक झटका, उसकी हरी हरी पत्तियाँ कुचल जाएँ और वह छिन्न होकर धूल में लौटने लगे।''[14]

कोमा शकराज के दर्प से दीप्त महत्वमयी पुरुष मूर्ति की पुजारिन थी, उसके स्वार्थपूर्ण कलुष मूर्ति नहीं। कोमा शकराज की विलासिता एवम् नीचता से दुःखी है। वह शकराज से प्रेम का नाम न लेने की प्रार्थना करती है क्योंकि वह एक पीड़ा थी उसके लिए और उसकी कसक भी धीरे धीरे दूर हो जायेगी। शकराज की हत्या हो जाती है। कोमा का स्त्रीत्व अपने प्रणयी के कर्त्तव्य की ओर ले जाता है और यह वेदनामयी नारी ध्रुवस्वामिनी से उसका शव माँगने जाती है, किन्तु वह शव देना अस्वीकार करती है। तब वह अत्यंत ही मार्मिक वाक्यों में उससे अनुरोध करती है– ''रानी, तुम भी स्त्री हो, क्या स्त्री की व्यथा न समझोगी? आज तुम्हारा विजय का अंधकार तुम्हारे शाश्वत स्त्रीत्व को ढँक ले, किन्तु सब के जीवन में एक बार प्रेम की दीपावली जलती है। जली होगी अवश्य। तुम्हारे भी जीवन में वह आलोक का महोत्सव आया होगा, जिसमें हृदय हृदय को पहचानने में प्रयत्न करता है, उदार बनता है और सर्वस्व दान करने का उत्साह रखता है। मुझे शकराज का शव चाहिये।''[15] जिसे सुनकर कठोर से कठोर हृदय भी पिघल उठता है। ध्रुवस्वामिनी उसे शव ले जाने की आज्ञा देती है।

प्रसाद जी ने अपनी कोमल भावनाओं की अभिव्यंजना के लिए ही कोमा जैसी नारी की सर्जना की है, कदाचित इसमें प्रसाद जी का प्रेमी हृदय फूट पड़ा है।

वास्तव में प्रसाद जी ने इस नाटक द्वारा यह यथार्थ को उठाया है कि शास्त्रीय ढंग से विवाह होने के उपरांत स्त्री को क्या यह अधिकार है कि वह अपने कलीव पति को छोड़ सकती है? और साथ ही कुमार गुप्त की मृत्यु के पश्चात उसे पट्टमहिषी मानकर विधवा विवाह को भी शास्त्रसम्मत किया है और इस प्रकार उन्होंने समाज द्वारा उपेक्षिता भारतीय विधवा और पति के अत्याचारों से प्रपीड़ित नारियों को मुक्ति का मार्ग दिखाया है।

प्रसाद जी के 'अजातशत्रु' नाटक में चार राज्यों की कथा एक साथ चलती है। जिसमें मगध, कौशल और कौशाम्बी के आपसी संबंध में संघर्ष का चित्रण नाटक के अंत तक हुआ है। मगध इन सभी राज्यों का मूल है। इस नाटक में बौद्ध धर्म का उत्कर्ष काल दिखाया गया है। मगधराज बिंबसार का वैवाहिक संबंध कौशल, काशी और कौशाम्बी से है। नाटक में सर्वत्र करूणा का ही साम्राज्य है। सभी मुख्य स्त्री पात्र गौतम बुद्ध के करुणावाद से प्रभावित हैं। 'अजातशत्रु' नाटक में करुणा और मैत्री का संदेश है। मल्लिका तो साक्षात् सजीव नारी चेतना एवं चरित्र का आदर्श ही है।

'मल्लिका' अजातशत्रु नाटक की प्रमुख नारी पात्र है कौशल के सेनापति बंधुल की पत्नी है। स्नेह, सेवा, उदारता, करुणा और विश्व प्रेम की भावना से ओत–प्रोत है। वह पति के कर्तव्य और उत्तरदायित्व को अच्छी तरह समझती है। उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को केवल अपने प्रेमपाश में बाँधकर रखना नहीं चाहती है। ''वीर हृदय युद्ध का नाम ही सुनकर नाच उठता है। शक्तिशाली भुजदंड़ फड़कने लगते हैं। भला मेरे रोकने से वे रुक सकते थे। कठोर कर्मपथ में अपने स्वामी के पैर का कंटक भी मैं नहीं होना चाहती। वह मेरे अनुराग, सुहाग की वस्तु हैं। फिर भी उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व है, हमारी श्रृंगार मंजुषा में बंद करके नहीं रखा जा सकता। महान हृदय को केवल विकास की मदिरा पिला के मोह लेना ही कर्तव्य नहीं है।''[16] उसे अपने पति के शौर्य पर विश्वास है। अपने पति के हृदय में मानों राज भक्ति की प्रेरणा वीरता की शक्ति बनकर अंतर्व्याप्त है। महामाया (शक्तिमयी) जब

उसे गुप्त रूप से होनेवाली बंधुल की हत्या के कुचक्र को बताती है और बंधुल को काशी वापस लौटाने की बात कहती हैं तब भी यह दृढ़ता से अपनी असीम राजभक्ति का परिचय देती है। ''रानी बस करो। मैं प्राणनाथ को अपने कर्तव्य से च्युत नहीं करा सकती और उनसे लौट आने का अनुरोध नहीं कर सकती। सेनापति का राजभक्त कुटुंब कभी विद्रोही नहीं होगा; और राजा की आज्ञा से वह प्राण दे देना अपना धर्म समझेगा, जब तक कि स्वयं राजा, राष्ट्र का द्रोही न प्रमाणित हो जाये।''[17] दुर्भाग्यवश मल्लिका का सौभाग्य छिन जाता है। पति के आकस्मिक वियोग के कारण उसके हृदय में जो दारुण स्थिति उत्पन्न होती है उसका वह अनुभव करती है पर सुप्रभाव रहकर अपने कर्तव्य का पालन करती है। घर में आये धर्माचार्य सारिपुत्र और आनंद का आतिथ्य सत्कार कितनी संघर्षशील दशा में करती है यह स्वयं उसकी उक्ति से स्पष्ट है। ''मैं भी व्यवहार जानती हूँ, आतिव्य परम धर्म है। मैं भी नारी हूँ, नारी के हृदय में जो हाहाकार होता है, वह मैं अनुभव कर रही हूँ। शरीर की धमनियाँ खिंचने लगती हैं। जी रो उठता है, तब भी कर्त्तव्य करना ही होगा।''[18]

यद्यपि वह जानती है कि उसका शत्रु कौन है फिर भी वह उसके प्रति क्रोध व्यक्त नहीं करती उसके धैर्य और विश्व मैत्री की भावना से सारिपुत्र भी अभिभूत है। ''उठो देवी, उठो। तुम्हें मैं क्या उपदेश करूँ? तुम्हारे चरित्र, धैर्य के कर्तव्य के स्वयं आदर्श हैं। तुम्हारे हृदय में अखंड़ शांति है। हाँ, तुम जानती हो कि तुम्हारा शत्रु कौन है; तब भी विश्वमैत्री के अनुरोध से, उससे केवल उदासीन ही न, प्रत्युत् द्वेष भी न रखो।''[19] वह प्रसेनजित के अपराध को न केवल उदासीन भाव से देखती है; वरन् विपत्ति आने पर उसकी सेवा भी करती है। वह जानती है कि विरूद्धक ने ही उसके पति की हत्या की है फिर भी वह द्वेष भाव से परे है। उसकी सेवा भी करती है। कभी–कभी ऐसा लगता है कि प्रसाद जी ने मानव चरित्र के स्वाभाविक विकास की गति को मोड़ दिया है और अपने कुछेक पात्रों को मानवी धरातल से बहुत दूर देवत्व के धरातल पर ले जाकर आसीन कर दिया है। क्योंकि जिस व्यक्ति ने मल्लिका के पति की हत्या कर दी है, उसी व्यक्ति की सेवा द्वेषभाव से हीन होकर करती दिखाई पड़ती है। सांसारिक द्वेषभाव, मोह, माया के बंधन से सर्वथा मुक्त दृष्टिगत होती है। मानवीय मनोविज्ञान की दृष्टि से वह असंभव प्रतीत होता है। मल्लिका युद्ध में घायल प्रसेनजित को अपनी कुटी में ले आती है, उसकी सेवा शुश्रूषा करती है। प्रसेनजित उसके उपकारों के बोझ से दबा जा रहा है और बार बार क्षमा माँगने पर भी उसे संतोष नहीं होता है। ''देवी, तुम्हारे उपकारों के बोझ से असह्य हो रहा हूँ। तुम्हारी शीतलता ने इस जलते हुए लोह पर विजय प्राप्त कर ली है। बार बार क्षमा माँगने पर हृदय को संतोष नहीं होता।''[20]

विद्रोही विरुद्धक को विश्वमैत्री के पथ पर खींच लाती है। विरुद्धक उसके पैरों गिरकर क्षमा माँगता है। शक्तिमती अपनी भूल स्वीकार करती है तथा क्षमायाचना करती है। मल्लिका शांति, संतोष, करुणा, उदारता, दया, ममता, उपकार आदि का संदेश लेकर नाटक में आई है। प्रसाद जी ने मल्लिका को कई स्थलों पर देवी, मूर्तिमते करुण, पतितपावनी आदि कहा है। मल्लिका सभी आदर्श से हीन पात्रों को आदर्श के पथ पर ले आती है।

'अजातशत्रु' नाटक में मल्लिका के अलावा और एक आदर्श नारी पात्र है वासवी। वासवी 'अजातशत्रु' नाटक की प्रमुख पात्रों में से एक है। यह मगध सम्राट बिम्बीसार की बड़ी रानी पद्मावती की माता और कौशल नरेश प्रसेनजित की बहन है। वासवी स्त्रीपरक, कोमलता, सहिष्णुता, पति परायणता आदि अनेक आदर्श गुणों से संपन्न है। इसकी सपत्नी छलना और छलना का पुत्र अजातशत्रु इससे अच्छा व्यवहार नहीं करते। छलना हमेशा वासवी के ऊपर व्यंग्य करती है, अपमानित करना चाहती है। किन्तु वासवी निच्छल हृदय से छलना और अजात की मंगल कामना करती है। काशी का राज्य वासवी को अपने पीहर से आँचल में मिला था, राज्य की ओर से उसकी आय भी उसे नहीं मिल पाती। उपवन में बिम्बसार के साथ रहकर आनंदभाव से उसकी सेवा करती है। पति की सुख आकांक्षा

को ही सर्वश्रेष्ठ मानती है। भौतिक सुख साधन से उसे वैराग्य भाव हैं। उपवन में जब भिक्षु लोग गाते हुए प्रवेश करते है तो बिम्बसार वासवी से भिक्षुओं को कुछ दे देने के लिये कहता है। वासवी के पास और कुछ नहीं सिर्फ हाथ में कंकण है उसे ही वह वीतराग भाव से उतारकर भिक्षुओं को देती हैं।''... और तो कुछ नहीं (कंकण उतार कर देती है) प्रभु ! इन और रत्नों का आँखों पर बड़ा रंग रहता है। जिससे मनुष्य अपना अस्थि चर्म का शरीर तक नहीं देखने पाता।''[21]

वासवी में दार्शनिक भावनाएँ भी है, उसके मन में भिन्न–भिन्न प्रकार की विचारधारायें आती है। वह कहती है–''आर्यपुत्र मुझे तो विश्वास है कि नीला पर्दा इसका रहस्य छिपाये हैं, जितना चाहता है उतना ही प्रकट करता है। कभी निशाकार को छाती पर लेकर खेला करता है, कभी ताराओं को बिखेरता और कृष्ण कुहू के साथ क्रीड़ा करती है।''[22] अजातशत्रु की प्रथम विजय से छलना जब गर्बांध होकर वासवी पर व्यंग्य करती है तो वासवी सहिष्णुतापूर्वक शान्त भाव से छलना को समझाती है।

''बहिन जाओ, सिंहासन पर बैठकर राजकार्य देखो। व्यर्थ झगड़ने से तुम्हें क्या सुख मिलेगा? और अधिक तुम्हें क्या कहूँ, तुम्हारी बुद्धि।''[23] अजात युद्ध में घायल होकर बंदी होता है। तब छलना सचेत होती है और वासवी की महानता के सम्मुख अपना पराभव स्वीकार करती है। वासवी से अपने पुत्र को माँगती है और अपनी गलती स्वीकार करती है। वासवी छलना को समझाती है– ''रानी! यही जो जानती कि नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्‌गम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है तो पुरुषार्थ का ढोंग क्यों करती। रो मत बहिन। मैं जाती हूँ, तु यही समझ की कुणार्क ननिहाल गया है।''[24] स्वयं कोशल आकर अजात को मुक्त करती है। अजात भी अपनी विमाता के निश्छल वात्सल्य प्रेम से प्रभावित होता है और वासवी से क्षमा माँगता है। वासवी छलना को बिम्बसार की ओर से क्षमा दिलाती है और दण्ड स्वरूप बिम्बसार के पौत्र की धात्री बनाती है। वासवी का चरित्र क्रियात्मक है, वह अपने गुणों से छलना तथा अजात को सुधार देती है। वासवी में दया, माया, ममता, क्षमा, उदारता आदि जो गुण हैं, वह इसे बहुत ऊपर उठा देते हैं। बिम्बसार को भ्रम होने लगता है कि वह मानवी है या देवी। अंत में वासवी सभी कुछ पा लेती है।

संदर्भ सूची–

1. ध्रुवस्वामिनी, जयशंकर प्रसाद, साक्षी प्रकाशन, एस–16, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, पृ0 12
2. वही, पृ0 23
3. वही, पृ0 25
4. वही, पृ0 27
5. वही, पृ0 27
6. वही, पृ0 31–32
7. वही, पृ0 53
8. वही, पृ0 57
9. वही, पृ0 35
10. वही, पृ0 37
11. वही, पृ0 37
12. वही, पृ0 41–42
13. वही, पृ0 41
14. वही, पृ0 43
15. वही, पृ0 53
16. अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, साक्षी प्रकाशन, एस–16, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, पृ0 74

17. वही, पृ0 76
18. वही, पृ0 83
19. वही, पृ0 84—85
20. वही, पृ0 92
21. वही, पृ0 40
22. वही, पृ0 86
23. वही, पृ0 89
24. वही, पृ0 111—112